पी. के. उन्नी

बनाम

निर्मला इंडस्ट्रीज़ एवं अन्य

20 फरवरी, 1990

[के. एन. सिंह, टी. कोचु थोम्मेन एवं एन. एम. कासलीवाल, न्यायमूर्तिगण]

आदेश 21 नियम 89 तथा 92(2) — डिक्री के निष्पादन में विक्रय की गई अचल संपत्ति — विक्रय को अपास्त कराने हेतु आवेदन के लिए निक्षेप किए जाने की परिसीमा अवधि।

विशेष अनुमति द्वारा प्रस्तुत इस अपील में, जिसे नीलामी-क्रेता द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध दायर किया गया है, विचारार्थ एकमात्र प्रश्न यह है कि दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 89 के अधीन आवेदन प्रस्तुत कर स्थावर संपत्ति के विक्रय को अपास्त कराने के लिए अपेक्षित निक्षेप किए जाने की परिसीमा अवधि क्या है। उक्त विक्रय डिक्री के निष्पादन में किया गया था। प्रश्न यह है कि क्या आदेश 21 के नियम 92 के उपनियम (2) के अनुसार जमा राशि विक्रय की तिथि से 30 दिनों के भीतर की जानी आवश्यक है, अथवा परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 में उपबंधित अनुसार विक्रय की तिथि से 60 दिनों के भीतर की जा सकती है?

थंगम्मल एवं अन्य बनाम वी. के. धनलक्ष्मी एवं अन्य तथा **इस न्यायालय के** *बसवंतप्पा बनाम गंगाधर नारायण धारवाड़कर एवं अन्य* **के निर्णय का अनुसरण करते हुए, उच्च न्यायालय ने यह धारित किया था कि नियम 89 के अधीन निक्षेप करने के लिए परिसीमा की अवधि अनुच्छेद 127 द्वारा शासित होती है। परिसीमा के प्रश्न पर उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए, इस न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए, यह**

अभिनिर्धारित किया : दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI के नियम 92(2) की सही व्याख्या अनिवार्य रूप से इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि आदेश XXI के नियम 89 के अधीन निक्षेप करने की अवधि 30 दिन है, और परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 127, जो नियम 89 के अधीन आवेदन करने के लिए अवधि विहित करता है, निक्षेप करने के लिए विहित अवधि के संबंध में कोई प्रासंगिकता नहीं रखता है। समय की दृष्टि से किसी भी उपबंध का दूसरे उपबंध पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। [489 जी-एच; 490 ए]

बसवंतप्पा बनाम गंगाधर नारायण धारवाड़कर एवं अन्य, **[1986] 4 एस सी सी 273, — निरस्त किया गया।**

नलिनकाया बिसाक बनाम श्याम सुन्दर हालदार एवं अन्य, **[1953] एस सी आर 533, पृष्ठ 545;** *मर्सी डॉक्स बनाम हेण्डरसन,* **[1888] 13 अपील वाद 595, पृष्ठ 602;** *क्रॉफर्ड बनाम स्पूनर,* [1846] 6 मूर पी. सी. 1, 8, 9; सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स बनाम एशर, ऑल ई. आर., [1949] 2.155 के **पृष्ठ 164 पर;** *एम. पेंटैय्या एवं अन्य बनाम मुद्दाला वीरमल्लप्पा एवं अन्य,* **[1961] 2 एस. सी. आर. 295 के पृष्ठ 314 पर;** *हेडन* **का मामला (1584) 3 कंपनी रिपोर्ट 7 ए : 76 ई. आर. 637;** *दक्षायिनी एवं अन्य बनाम माधवन,* **ए आई आर 1982 केरल 126, का संदर्भ लिया गया।**

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1990 की दीवानी अपील सं. 1308

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा ए. ए. ओ. सं. 421/83 में पारित दिनांक 9.12.86 के निर्णय एवं आदेश से।

के. परासरन, बी. राममूर्ति तथा वी. बालचन्द्रन, अपीलकर्ता की ओर से।

एम. आर. नारायणस्वामी तथा ए. टी. एम. सम्पत, प्रतिवादियों की ओर से।

न्यायालय का निर्णय

माननीय न्यायमूर्ति थॉमेन द्वारा प्रदत्त : विशेष अनुमति प्रदान की जाती है।

यह अपील मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा ए. ए. ओ. सं. 421 सन् 1983 में दिए गए निर्णय से उत्पन्न हुई है। विचारण हेतु उत्पन्न होने वाला एकमात्र प्रश्न यह है कि डिक्री के निष्पादन में विक्रय की गई स्थावर संपत्ति के विक्रय को अपास्त कराने के लिए दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI के नियम 89 के अधीन आवेदन करने हेतु निक्षेप किए जाने के लिए परिसीमा की अवधि क्या है। क्या ऐसा निक्षेप आदेश XXI के नियम 92 के उपनियम (2) के अनुसार विक्रय की तिथि से 30 दिनों के भीतर किया जाना आवश्यक है, अथवा परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 में उपबंधित विक्रय की तिथि से 60 दिनों के भीतर?

उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा यह धारित किया कि नियम 89 के अधीन निक्षेप करने के लिए परिसीमा की अवधि अनुच्छेद 127 द्वारा शासित होती है। इस निष्कर्ष पर पहुँचने में उच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णय *थंगम्मल एवं अन्य बनाम वी. के. धनलक्ष्मी एवं अन्य*, ए आई आर 1981 मद्रास 254 तथा इस न्यायालय के *बसवंतप्पा बनाम गंगाधर नारायण धारवाड़कर एवं अन्य*, [1986] 4 एस सी सी 273 के निर्णय का अनुसरण किया। उत्तरवर्ती निर्णय में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ ने यह धारित किया कि *थंगम्मल* (उपरोक्त) का निर्णय विधिसम्मत था तथा विक्रय की तिथि से 60 दिनों के भीतर किया गया निक्षेप समय के भीतर ही था।

हम उन प्रासंगिक उपबंधों का अवलोकन करेंगे जहाँ तक वे इस मामले के लिए महत्वपूर्ण हैं। आदेश XXI का नियम 89 इस प्रकार उपबंधित करता है :

"89. निक्षेप किए जाने पर विक्रय को अपास्त करने हेतु आवेदन — (1) जहाँ किसी डिक्री के निष्पादन में स्थावर संपत्ति का विक्रय किया गया हो, वहाँ विक्रय की गई संपत्ति में विक्रय के समय या आवेदन किए जाने के समय हित का दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति, अथवा ऐसे व्यक्ति की ओर से या उसके हित में कार्य करने वाला कोई व्यक्ति, न्यायालय में निम्नलिखित राशि निक्षेप करके विक्रय को अपास्त किए जाने हेतु आवेदन कर सकता है—

(क) क्रेता को भुगतान हेतु, क्रय-मूल्य के पाँच प्रतिशत के बराबर राशि; तथा

(ख) डिक्रीधारक को भुगतान हेतु, विक्रय उद्घोषणा में विनिर्दिष्ट वह राशि जिसकी वसूली के लिए विक्रय का आदेश दिया गया था, उसमें से ऐसी कोई राशि घटाकर, जो ऐसी विक्रय उद्घोषणा की तिथि के पश्चात् डिक्रीधारक द्वारा प्राप्त की गई हो,

....."

आदेश XXI का नियम 92(2) इस प्रकार है :

"(2) ..... जहाँ नियम 89 के अधीन आवेदन के मामले में, उस नियम द्वारा अपेक्षित निक्षेप विक्रय की तिथि से तीस दिनों के भीतर कर दिया जाता है, [या जहाँ नियम 89 के अधीन निक्षेप की गई राशि में निक्षेपकर्ता की ओर से किसी लिपिकीय अथवा अंकगणितीय त्रुटि के कारण कोई कमी रह गई हो और ऐसी कमी को न्यायालय द्वारा नियत की जाने वाली अवधि के भीतर पूरा कर दिया जाए, वहाँ न्यायालय विक्रय को अपास्त करने का आदेश पारित करेगा।]

....."

नियम 92(2) में कोष्ठक के भीतर प्रदर्शित शब्दों को दीवानी प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 72 द्वारा 1.2.1977 से प्रतिस्थापित किया गया था। इस संशोधन का उद्देश्य आवेदक को ऐसी किसी कमी को पूरा करने का अवसर प्रदान करना था, जो नियम 89 के अधीन निक्षेप की गई राशि में उसकी ओर से हुई किसी लिपिकीय अथवा अंकगणितीय त्रुटि के कारण उत्पन्न हुई हो। परिसीमा की अवधि के संबंध में विवादित प्रश्न से उस संशोधन का कोई संबंध नहीं है, सिवाय इसके कि वह इस तथ्य पर बल देता है कि नियम 92 के उपनियम (2) पर संसद द्वारा सन् 1976 में विशेष रूप से विचार किया गया था। संसद ने विशेष रूप से उक्त उपनियम पर अपना ध्यान केंद्रित किया था, तथापि संशोधन द्वारा उपबंधित विशेष आकस्मिकता को छोड़कर उसने सामान्यतः नियम 92(2) के अधीन विहित उस अवधि को बढ़ाना आवश्यक नहीं समझा, जिसके भीतर वह निक्षेप किया जाना है जो विक्रय को अपास्त करने के आवेदन के लिए एक पूर्ववर्ती अनिवार्य शर्त है।

नियम 89 निक्षेप पर आधारित आवेदन का उपबंध करता है। उसमें कहा गया है कि "न्यायालय में निक्षेप करके विक्रय को अपास्त किए जाने हेतु आवेदन कर सकता है।" ये शब्द दर्शाते हैं कि निक्षेप, विक्रय को अपास्त करने के लिए आवेदन किए जाने की एक पूर्ववर्ती अनिवार्य शर्त है। उस शर्त का पालन नियम 92 के उपनियम (2) द्वारा विहित अवधि के भीतर किया जाना चाहिए, जो निस्संदेह 30 दिन है। संसद ने उस उपबंध में परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया, जबकि उपनियम के एक भाग का प्रतिस्थापन किया गया था।

निस्संदेह, यदि नियम 89 के अधीन आवेदन करने के लिए परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 127 (जैसा कि संशोधन अधिनियम 104 सन् 1976 द्वारा 1.2.1977 से प्रतिस्थापित किया गया) द्वारा विहित अधिक अवधि न होती, तो संभवतः इस पहलू पर कोई संदेह उत्पन्न न होता। उक्त अनुच्छेद इस प्रकार है :

वाद का विवरण	परिसीमा की अवधि	वह समय जिससे अवधि प्रारम्भ होती है
127. डिक्री के निष्पादन में हुई विक्रय को निरस्त कराने के लिए, जिसमें निर्णय देनदार द्वारा किया गया ऐसा कोई आवेदन भी सम्मिलित है।"	साठ दिन	विक्रय की तिथि

संशोधन अधिनियम 104 सन् 1976 से पूर्व अनुच्छेद 127 द्वारा विहित अवधि 30 दिन थी। संशोधन के परिणामस्वरूप विक्रय को अपास्त करने हेतु आवेदन करने के लिए 60 दिनों की अवधि प्रदान की गई। यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि अनुच्छेद 127, परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची के भाग । के तृतीय विभाग में आता है, जो विशिष्ट रूप से आवेदनों से संबंधित है। अनुच्छेद 127 का संबंध केवल आवेदन किए जाने से है, निक्षेप से नहीं। यह अनुच्छेद नियम 90 तथा नियम 91 के अधीन किए गए आवेदनों को भी शासित करता है, किन्तु हम उनसे यहाँ संबंधित नहीं हैं।

यह सत्य है कि 1976 के संशोधन अधिनियम 104 से पूर्व आवेदन किए जाने के लिए विहित अवधि और निक्षेप किए जाने के लिए विहित अवधि समान थी। किन्तु संशोधन के परिणामस्वरूप अब निक्षेप किए जाने और आवेदन किए जाने के लिए भिन्न-भिन्न अवधियाँ विहित की गई हैं। यह कि इन दोनों विषयों के लिए पृथक् परिसीमा अवधियाँ प्रदान करना ही विधायिका का आशय था, दोनों अधिनियमों में प्रयुक्त भाषा से स्पष्ट और असंदिग्ध रूप से प्रकट होता है। डिक्री के निष्पादन में विक्रय की गई स्थावर संपत्ति के विक्रय को अपास्त करने के

लिए जिन दो आवश्यक चरणों का पालन किया जाना है — जिनमें एक चरण दूसरे के पश्चात् आता है — उनके लिए विधायिका ने पृथक् अवधियाँ क्यों निर्धारित कीं, यह ऐसा विषय नहीं है जिस पर न्यायालय प्रश्न उठाए। यह न्यायालय यह अनुमान नहीं लगाएगा कि इस संबंध में विधायिका से कोई त्रुटि हुई थी अथवा उसने उस उद्देश्य की प्राप्ति में, जिसे वह प्राप्त करना चाहती थी, कोई चूक की थी।

भिन्न-भिन्न परिसीमा अवधियाँ विहित करने वाले इन दोनों उपबंध-समूहों के बीच कोई असंगति नहीं है। ऐसी असंगति तभी उत्पन्न हो सकती है जब एक उपबंध का पालन करने से दूसरे उपबंध का उल्लंघन होता हो। जहाँ नियम 92(2) यह अपेक्षा करता है कि विक्रय की तिथि से 30 दिनों के भीतर निक्षेप किया जाए, वहीं अनुच्छेद 127 यह अपेक्षा करता है कि नियम 89 के अधीन परिकल्पित आवेदन विक्रय की तिथि से 60 दिनों के भीतर किया जाए। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, निक्षेप का आवेदन से पूर्व किया जाना अनिवार्य है, क्योंकि नियम 89 के अधीन कोई आवेदन न्यायालय में राशि निक्षेप किए बिना नहीं किया जा सकता। हमें इन दोनों उपबंध-समूहों में कोई असंगति दिखाई नहीं देती।

विधियों के शब्द स्पष्ट, अभिव्यक्त तथा निर्विवाद हैं, अतः उनकी व्याख्या के लिए किसी बाह्य सहायता का सहारा लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। तथापि, प्रतिवादियों के अधिवक्ता के तर्कों के प्रति सम्मानवश, हम 8 अप्रैल, 1974 को लोकसभा में प्रस्तुत विधेयक के खंड 102, जो भारत के राजपत्र (असाधारण) भाग II, खंड 2, दिनांक 8 अप्रैल, 1974 में प्रकाशित हुआ था और जिसके द्वारा अनुच्छेद 127 में संशोधन किया गया था, के उद्देश्य एवं कारणों के विवरण का उल्लेख करेंगे। उसमें कहा गया है :

> "खंड 102 (परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची का संशोधन)—आदेश XXI के नियम 89 के अधीन निक्षेप के आधार पर डिक्री के निष्पादन में हुए विक्रय को

अपास्त करने के लिए आवेदन, विक्रय की तिथि से तीस दिनों के भीतर किया जाना अपेक्षित है। अनुभव से ज्ञात हुआ है कि यह अवधि अत्यन्त अल्प है और प्रायः कठिनाई उत्पन्न करती है, क्योंकि न्याय-ऋणी सामान्यतः उस अवधि के भीतर धन की व्यवस्था करने में असफल रहते हैं। बैंक प्रायः ऋण तथा अग्रिम स्वीकृत करने में तीस दिनों से अधिक समय लेते हैं। इन परिस्थितियों में, परिसीमा अधिनियम की अनुसूची की प्रविष्टि 127 में संशोधन किया जा रहा है ताकि डिक्री के निष्पादन में हुए विक्रय को अपास्त करने हेतु *आवेदन* के संबंध में परिसीमा की अवधि बढ़ाकर साठ दिन की जा सके। परिसीमा की अवधि में यह वृद्धि क्रेता को प्रभावित नहीं करेगी, क्योंकि उसे क्रय-मूल्य का पाँच प्रतिशत भुगतान किया जाना अपेक्षित है। परिसीमा की अवधि में वृद्धि का लाभ आदेश XXI के नियम 90 अथवा नियम 91 के अधीन डिक्री के निष्पादन में हुए विक्रय को अपास्त करने हेतु किए गए आवेदन को भी उपलब्ध होगा। परिसीमा की अवधि में वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए, विक्रय की पुष्टि को परिसीमा की बढ़ी हुई अवधि की समाप्ति तक प्रतीक्षा करनी होगी।"

(बल दिया गया)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होने वाला विधायी आशय वास्तव में आवेदन करने के लिए विहित अवधि का विस्तार करना था, किसी अन्य प्रयोजन के लिए नहीं। यही कारण है कि अनुच्छेद 127 में संशोधन करके आवेदन करने की अवधि 30 दिनों से बढ़ाकर 60 दिन कर दी गई। उस अवधि का निक्षेप किए जाने के लिए अनुमत समय से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि वह अवधि अनुच्छेद 127 के अधीन नहीं, बल्कि आदेश XXI के नियम 92(2) के अधीन विहित है,

और यह अवधि सदैव 30 दिन रही है तथा अब भी 30 दिन ही है। हमें इन दोनों उपबंध-समूहों में कोई प्रतिकूलता, असंगति अथवा अस्पष्टता दिखाई नहीं देती।

अपीलकर्ता (नीलामी क्रेता) की ओर से उपस्थित श्री परासरन ने निवेदन किया कि उच्च न्यायालय उस बात को, जिसे उसने विधि में कोई दोष अथवा लोप समझा था, सुधारने अथवा उसकी पूर्ति करने का प्रयास करने में न्यायोचित नहीं था। उनका यह तर्क सही है कि यदि वास्तव में कोई लोप था भी, तो उसका परिशोधन करना न्यायालय का कार्य नहीं था।

न्यायालय को निश्चय ही इस धारणा के आधार पर आगे बढ़ना चाहिए कि विधायिका ने कोई त्रुटि नहीं की और उसका आशय वही कहने का था जो उसने कहा है। देखिए, *नलिनाख्य बिसाक बनाम श्याम सुन्दर हलदार एवं अन्य*, [1953] एस सी आर 533 के पृष्ठ 545 पर। यदि यह मान भी लिया जाए कि विधायिका द्वारा प्रयुक्त शब्दों में कोई दोष अथवा लोप है, तब भी न्यायालय उस दोष को सुधारने अथवा उसकी पूर्ति करने के लिए उसकी सहायता को नहीं जाएगा। न्यायालय किसी विधि में ऐसे शब्द जोड़ नहीं सकता और न ही उसमें ऐसे शब्द पढ़ सकता है जो वहाँ हैं ही नहीं, विशेषकर तब जबकि उसके शाब्दिक पाठ से एक बोधगम्य परिणाम प्राप्त होता हो। "ऐसा कोई वाद नहीं पाया जा सकता जो किसी न्यायालय को किसी शब्द में इस प्रकार परिवर्तन करने के लिए प्राधिकृत करता हो कि विधायिका द्वारा छोड़ी गई कमी की पूर्ति हो जाए"; *लॉर्ड हैल्सबरी, मर्सी डॉक्स बनाम हेन्डरसन*, [1888] 13 अपील मामले 595, 602। "हम किसी अधिनियम में विधायिका द्वारा प्रयुक्त दोषपूर्ण शब्दावली की सहायता नहीं कर सकते, हम उसका संशोधन नहीं कर सकते, और न ही व्याख्या के माध्यम से उन कमियों की पूर्ति कर सकते हैं जिन्हें वहाँ छोड़ दिया गया है"; *क्रॉफर्ड बनाम स्पूनर,* [1846] 6 मूर पी. सी. 1, 8, 9।

जहाँ किसी विधि की भाषा अधिनियम के प्रत्यक्ष उद्देश्य के साथ स्पष्ट विरोधाभास उत्पन्न करती है, वहाँ न्यायालय निश्चय ही ऐसी व्याख्या अपना सकता है जो विधायिका के स्पष्ट आशय को प्रभावी बनाए। ऐसा करते समय "न्यायाधीश को उस सामग्री में परिवर्तन नहीं करना चाहिए जिससे अधिनियम का ताना-बाना बुना गया है, किन्तु वह उसकी सिलवटों को दूर कर सकता है और उसे दूर करना चाहिए।" : डेनिंग, एल. जे. (जैसा कि वे उस समय थे), *सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स बनाम एशर*, ऑल ई. आर. [1949] 2 155 के पृष्ठ 164 पर। *एम. पेंटैय्या एवं अन्य बनाम मुद्दाला वीरमल्लप्पा एवं अन्य*, [1961] 2 एस सी आर 295 के पृष्ठ 314 पर, सरकार, न्यायमूर्ति की टिप्पणी भी देखिए।

प्रासंगिक उपबंधों की व्याख्या में हमें न तो कोई विरोधाभास, न कोई अस्पष्टता, न कोई दोष और न ही कोई लोप दिखाई देता है। हमें इस तर्क में कोई सार नहीं दिखाई देता कि परिसीमा के संबंध में अनुच्छेद 127 को आदेश XXI के नियम 92(2) पर अधिभावी माना जाना चाहिए। हमारे मत में दोनों उपबंध भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए समय-सीमा विहित करते हैं, और दोनों समान प्रभावशीलता तथा समान विशिष्टता रखते हैं। "*सामान्य उपबंध विशेष उपबंध को अपास्त नहीं करता*" का सिद्धांत उनकी व्याख्या के लिए प्रासंगिक नहीं है। इसी प्रकार *हेडन* के मामले [1584] 3 कंपनी रिपोर्ट 7ए : 76 ई. आर. 637 में प्रतिपादित सिद्धांत भी विवादित प्रश्न पर कोई सहायता प्रदान नहीं करता। अनुच्छेद 127 में संशोधन द्वारा विधायिका जिस दोष का निवारण करना चाहती थी, वह उद्देश्य एवं कारणों के विवरण में व्यक्त किया गया है। उस उद्देश्य की पूर्ति डिक्री के निष्पादन में हुए विक्रय को अपास्त करने हेतु आवेदन प्रस्तुत करने के लिए अधिक अवधि विहित करके की गई। इसके अतिरिक्त, जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, आदेश XXI के नियम 92(2) में संशोधन द्वारा निक्षेपकर्ता को यह अवसर प्रदान किया गया कि यदि उसके द्वारा किया गया निक्षेप उसकी ओर से हुई किसी अंकगणितीय अथवा लिपिकीय त्रुटि

के कारण कम रह गया हो, तो वह उस कमी को पूरा कर सके। इसके अतिरिक्त किसी अन्य दृष्टि से विधायिका ने निक्षेप किए जाने के लिए विहित अवधि बढ़ाने का कोई आशय व्यक्त नहीं किया। निस्संदेह, जैसा कि केरल उच्च न्यायालय ने *दक्षायिनी एवं अन्य बनाम माधवन*, ए आई आर 1982 केरल 126 में कहा है, निक्षेप किए जाने की अवधि को बढ़ाकर उसे आवेदन किए जाने की अवधि के समान कर देना संभवतः अधिक उपयुक्त, अधिक तार्किक, अधिक युक्तिसंगत तथा अधिक व्यावहारिक होता, और ऐसी विस्तारित अवधि संशोधन के उद्देश्य, अर्थात् न्याय-ऋणी की कठिनाई को कम करने, की बेहतर पूर्ति करती; किन्तु ऐसे विषय पूर्णतः संसद के विधायी क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आते हैं और न्यायालय किसी कमी की कल्पना करके उस लोप की पूर्ति नहीं कर सकता। हमारे मत में, विधायिका ने जितना करना चाहा, उतना ही किया और उससे अधिक नहीं। उसने वही प्राप्त किया जिसका वह लक्ष्य रखती थी। न उससे अधिक, न उससे कम।

इन परिस्थितियों में, हम यह धारित करते हैं कि दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI के नियम 92(2) की सही व्याख्या अनिवार्य रूप से इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि आदेश XXI के नियम 89 के अनुसार *निक्षेप* करने की अवधि 30 दिन है, और परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 127, जो नियम 89 के अधीन आवेदन करने के लिए अवधि विहित करता है, निक्षेप किए जाने के लिए विहित अवधि के संबंध में कोई प्रासंगिकता नहीं रखता है। समय की दृष्टि से किसी भी उपबंध का दूसरे उपबंध पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रश्न पर इसके विपरीत दिए गए सभी निर्णय, हमारे मत में, सही नहीं हैं। अत्यन्त सम्मान के साथ, हम ब*सवंतप्पा बनाम गंगाधर नारायण धारवाड़कर एवं अन्य*, [1986] 4 एस सी सी 273 में व्यक्त विपरीत मत से असहमति व्यक्त करते हैं।

परिसीमा के प्रश्न पर उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है और अपील उस सीमा तक स्वीकार की जाती है। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

आर. एन. जे. अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर) - स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।

सन्नी प्रसाद